बँधे इक डोरी से | बच्चे, समुदाय और शिक्षक

जगमोहन सिंह कठैत

'पेट में नहीं होगा अन्न, तो पढ़ने में कैसे लगेगा मन' जैसी कहावतें अक्सर सुनी हैं हमने। यह कहावतें यही तो दर्शाती हैं न कि ज़िन्दा रहने की चीज़ें निश्चित ही स्कूली पढ़ाई-लिखाई से पहले आती हैं। जिन परिवारों की प्राथमिकताएँ पेट की भूख को शान्त करना होती हैं या इसके लिए आजीविका की तलाश होती है, उन परिवारों से आने वाले बच्चों को शैक्षिक बातचीत में अक्सर 'फर्स्ट जनरेशन लर्नर' कहा जाता है। मालूम नहीं उन्हें फर्स्ट जनरेशन लर्नर क्यों कहते हैं। शायद इसलिए कि लर्निंग या सीखना तो स्कूल में ही होता है ऐसा माना जाता हो। या फ़िर इनके माता-पिता शायद यह नहीं सोच पाते हों कि हमारे बच्चे अभी पढ़ेंगे-लिखेंगे, कुछ सीखेंगे तो 15-20 साल बाद एक बेहतर और कम शारीरिक मेहनत वाला जीवन जी पाएँगे। मालूम नहीं, सोच पाने की क्षमताओं का अभाव है या अभावों का प्रभाव है, जो सोचने के लिए ठहराव ही नहीं देता। ख़ैर जो भी हो, कुल मिलाकर परिणाम तो यही है कि ऐसे लोगों की प्राथमिकता में स्कूली पढ़ाई-लिखाई दोयम दर्जा ही पाती है।

जहाँ आम बच्चों के होमवर्क होते हैं, सुलेख लिखना, कविता याद करना, सवाल बनाना आदि, वहीं इनके 'होमवर्क' कुछ अजीब क़िस्म के होते हैं। स्कूल से आने के बाद उनके तयशुदा होमवर्क होते हैं जैसे– लकड़ी लाना, घास काटना, पशुओं की देखभाल करना, छोटे भाई-बहनों को सम्भालना, माता-पिता की अनुपस्थिति में घर की देखभाल करना, अनाज की कटाई, छँटाई आदि करना। और हाँ, अगर लड़की है तो शाम के लिए खाना बनाना भी तो शामिल है। उनके लिए स्कूल से मिले होमवर्क से अधिक सहज, नैसर्गिक और आवश्यक उपरोक्त कार्य हैं। स्कूल से मिला होमवर्क तो उन्हें उनके दैनिक जीवन से दूर और अति-कृत्रिम लगता है। इसे पूरा करने के लिए उन्हें सायास प्रयास करना पड़ता है। अपने सोचने, विचारने, भावाभिव्यक्ति के सहज पैटर्न से हटकर नए पैटर्न को समझना और अपनाना पड़ता है। वह भी इतना जटिल कि जिसका उन्हें अपने जीवन से सीधा रिश्ता दिखाई ही नहीं देता। ऐसी पृष्ठभूमि वाले अधिकांश बच्चे कम-से-कम प्राथमिक स्तर पर तो सरकारी विद्यालयों में ही पढ़ते हैं। इसलिए भी यह सरकार का दायित्व है कि सभी के लिए शिक्षा मुहैया करवाए।

प्रचलित मान्यताएँ

ओह! मैं भूमिका में कुछ ज़्यादा ही चला गया। ख़ैर चलो वापस अपनी मूल बात पर आते हैं। मैं यह बात रखना चाह रहा था कि उपरोक्त पृष्ठभूमि के बच्चों के बारे में यानि सरकारी विद्यालयों के बच्चों के बारे में अक्सर कहा जाता है कि इनका अधिगम अपेक्षित स्तर का नहीं है। कक्षा 5-7 तक के बच्चों को अक्षर-पहचान तक नहीं आती। विभिन्न संस्थान इसी प्रकार के शोध करते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर इस बारे में संगोष्ठियाँ आयोजित की जाती हैं। सरकार भी अपने स्तर पर समय-समय पर विभिन्न प्रकार के शोध करती रहती है। तमाम शोध यही स्थापित करने की कोशिश करते हैं कि सरकारी विद्यालयों में बच्चों का अधिगम-स्तर कक्षा के अनुरूप नहीं है।

इस पूरी प्रक्रिया में अक्सर शिक्षकों को दोषी ठहराने का प्रयास रहता है। कहा जाता है कि शिक्षक लोग अपना काम ठीक से नहीं करते हैं, वे काफ़ी छुट्टियाँ मारते हैं, हालाँकि 'शिक्षक अनुपस्थिति' पर किया गया हमारा शोध ऐसा नहीं बताता। शोध तो यही बताता है कि शिक्षक विद्यालय से बाहर तो रहते हैं लेकिन विभिन्न सरकारी कार्यों की वजह से। दूसरी ओर जब शिक्षकों से इसके कारण पूछे जाते हैं तो वे बच्चों की पृष्ठभूमि, उनकी ग़रीबी और नियमित स्कूल न आने को दोष देते हैं। जो एक स्तर पर ठीक भी प्रतीत होता है। साथ ही वे सरकार की योजनाओं और नीतियों को भी दोष देते हैं। पर मेरा एक लम्बी अवधि का अनुभव और अवलोकन यह कहता है कि इन तमाम परिस्थितियों के चलते भी ऐसे बहुत सारे सरकारी शिक्षक-शिक्षिकाएँ हैं जो बेहतर ढंग और असरदार तरीक़े से काम कर रहे हैं। सिर्फ़ मेरा ही नहीं, बल्कि गाँव-समाज के लोगों का भी ऐसा ही मानना है। तभी तो लोग ऐसे शिक्षकों के स्थानान्तरण रुकवाने या विदाई देने के लिए उमड़ पड़ते हैं। यहाँ पर यह देखना और समझना दिलचस्प होगा कि लगभग एक-समान परिस्थिति में कुछ लोग बेहतर काम कर पा रहे हैं तो कुछ नहीं कर पा रहे हैं। जो शिक्षक बेहतर परिणाम दे रहे हैं वे आख़िर ऐसा क्या कर रहे हैं जिससे ऐसा हो पा रहा है। यदि ऐसे शिक्षकों की प्रक्रियाओं को समझा जाए तो एक उम्मीद बँधती है कि ऐसा करने से परिणाम बेहतर आ सकते हैं।

मैं जब उन तमाम प्रभावी, बेहतर और असरदार शिक्षकों की तस्वीर अपने दिल में लाता हूँ तो कुछ बातें है जो उन सभी की स्कूली दिनचर्या में समान रूप से दिखती है। मैं उस वक़्त के बारे में सोचता हूँ जब मैं शिक्षण कार्य करता था तो स्वयं को भी इन्ही शिक्षकों की जमात का पाता हूँ। इन्हीं प्रक्रियाओं

में से बहुत-सी चीज़ें करता भी था। इसलिए जब आगे इन प्रक्रियाओं को दर्ज करने की कोशिश कर रहा होऊँगा तो अपने व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों और अनुभवों को शायद अलग न रख पाऊँ। संभवतः मैं बहुत सलीक़े से उन शिक्षकों की समान या कॉमन प्रक्रियाओं को दर्ज न कर पाऊँ। फिर भी जो समझ पा रहा हूँ वे प्रक्रियाएँ कुछ इस प्रकार हैं।

ख़ुशियों में शामिल होना

बेहतर कर पाने वाले शिक्षकों के बारे में मैंने पाया कि यह लोग बच्चों के घरों पर होने वाली ख़ुशियों के अवसर पर जाते हैं और उनमें शरीक होते हैं। जैसे बच्चों के घर में किसी का विवाह हो, मुण्डन हो, बच्चे का जन्म हुआ हो या किसी का जन्मदिन हो, यहाँ तक कि यदि किसी के घर गाय-भैंस को बच्चा भी हुआ हो तो उन ख़ुशियों में शरीक होते हैं। यदि शरीक न हो पाए तो लोग खीस (शुरुआती दिनों का दूध) का डिब्बा भरकर स्कूल में भिजवा देते हैं। ख़ुशियों भरे क्षणों में भागीदार होने से शिक्षक, अभिभावक और बच्चे के बीच आत्मीय रिश्ते तो पैदा होते ही हैं, साथ ही शिक्षक यह भी समझ पाता है कि परिवार के सदस्यों और बच्चों के बीच क्या केमिस्ट्री है। केमिस्ट्री से मेरा मतलब है कि बच्चों के माता-पिता के आपसी रिश्ते कैसे हैं, दादा-दादी के बीच के सम्बन्ध कैसे हैं, चाचा-चाची, माता-पिता और बच्चों के आपसी सम्बन्धों का बहाव कैसा है आदि। यानि वे तमाम सम्बन्ध जिसका बच्चों की भावनात्मक, विचारात्मक व क्रियात्मक गतिविधियों पर असर पड़ता है। इस केमिस्ट्री का मालूम होना शिक्षक के शिक्षा-कर्म को बहुत प्रभावी बनाता है। कक्षा-कक्ष में बच्चे को किस प्रकार की हैण्ड होल्डिंग देनी है, किस प्रकार की संवेदनशीलता बरतनी है, किस प्रकार मनोबल बढ़ाना है या बच्चा कोई बात नहीं समझ रहा है तो क्या सम्भावित कारण हो सकते हैं, इन सभी बातों की समझ बनाने में परिवार की केमिस्ट्री का जानना बड़ा प्रभावी होता है। और इन मुद्दों को हल करने की तरकीब एक सचेत शिक्षक के ज़ेहन में ख़ुद ही उतर आती है। इसके लिए उसे विशेष प्रयास नहीं करने होते हैं बल्कि उसकी सचेतनशीलता ही उसे सहज रूप से इस दिशा की ओर ले जाती है।

शिक्षक, पालकों की ख़ुशी में शामिल होकर यह सम्मान अभिभावक को देता है तो वे भी उस पर अपना प्यार उड़ेल देते हैं। यह प्यार की गर्माहट कभी नई फ़सल आने पर शिक्षक को दाल की पोटली देने में झलकती है, तो कभी लौकी-कद्दू की बेल में लगी सब्जी को प्यार से शिक्षिका के हाथ में थमाते समय महसूस की जा सकती है। घर में पौधे ने पहली बार फल दिया हो तो वह भी गुरुजी/बहिन जी के लिए बचाया जाता है। भैंस बिहाई हो तो खीस की कटोरी में भी देखा जा सकता है। सम्मान और प्यार का शिक्षण-प्रक्रियाओं के साथ बड़ा जटिल रिश्ता है। इसे समझने से अधिक महसूसना होता है। तार्किकता से विश्लेषित करने पर शायद इसके रेशे ही बिखर जाएँ।

दुख की घड़ियों में साथ

एक और बात जो कुछ बेहतर कर पाने वाले शिक्षकों में दिखती है, वह है कि यह न केवल ख़ुशियों के पलों में अभिभावकों के साथ होते हैं बल्कि मुश्किल की घड़ियों में भी उनके साथ होते हैं। घर-परिवार में किसी के बीमार होने पर मिलने जाते हैं, फ़ोन पर हालचाल पूछते हैं। किसी भी प्रकार की हानि (इन्सान, पशु से लेकर खेत-खलिहान बह जाने तक) के बारे में बात करते हैं। पारिवारिक मन-मुटाव और झगड़ों तक का ख़्याल होता है उन्हें। मालूम नहीं कि आत्मीयता से किसी के हालचाल पूछने भर से ऐसा क्या हो जाता है, रिश्तों के कौन-से तन्तु गतिमान हो जाते हैं कि पूरा-का-पूरा दृश्य अलग दिखने लग जाता है। मज़ेदार बात तो यह है कि इसके लिए कुछ विशेष प्रयास नहीं करने पड़ते हैं। रिश्ते जब महसूस होते हैं तो यह सब जानकारियाँ लेनी नहीं होती हैं बल्कि हो जाती हैं। लॉकडाउन के दौरान भी उन बच्चों से सम्पर्क करना और उनके परिवारों की मुश्किलों को समझना, उसे महसूस करना साथ ही जो हो सके उसमें हाथ बँटाने के लिए तैयार रहते हैं। इन विशेषताओं का, एक प्रभावी शिक्षक बनने से संभवतः सीधा सम्बन्ध न हो लेकिन इन भूमिकाओं के कारण यह शिक्षक असरकारी ज़रूर हो जाते हैं।

गाँव-समाज के मामलों में भागीदारी

यह भी देखने को मिलता है कि ऐसे शिक्षक न केवल अभिभावकों के साथ ही अपने इन आत्मीय रिश्तों को जोड़ते हैं बल्कि पूरे गाँव-समाज के साथ जुड़ते हैं। गाँव-समाज के पूजा-पाठ से लेकर तीज-त्यौहारों में अपनी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष भागीदारी देख पाते हैं। गाँव-समाज की महिलाएँ इन शिक्षिकाओं के पास अपने घर-मायके के दुख साझा करती हैं। अपने स्वास्थ्य आदि के हालचाल बताती हैं। शिक्षिकाएँ भी दवा आदि से लेकर विभिन्न प्रकार की राय-मशविरा देती हैं। इस प्रकार की भागीदारी सम्भवतः बच्चे के शिक्षण में सीधे तौर पर कोई भूमिका न निभाती हो लेकिन विद्यालय-समुदाय के आपसी रिश्तों के लिहाज़ से काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। ऐसे गाँव-समाज के लोग विद्यालय को अपना समझते हैं और विद्यालय को सँवारने व निखारने में अपनी भागीदारी सहज व नैसर्गिक रूप से निभाते हैं। विद्यालय का कोई कार्यक्रम हो या विद्यालय के लिए श्रमदान आदि, सभी में सक्रिय भागीदारी करते हैं। जहाँ और जब, यह रिश्ते आत्मीय नहीं होते हैं तो ऐसी जगह के बारे में हम अक्सर सुनते हैं कि विद्यालय से कुछ सामान चोरी हो गया, विद्यालय में तोड़-फोड़ कर दी, किसी ने विद्यालय में आकर शराब पीकर गन्दगी फैला दी आदि। बहुत

बार हम देखते हैं कि समुदाय और विद्यालय का रिश्ता शक पर आधारित हो जाता है। धरना-प्रदर्शन से लेकर शिकायतों तक मामले चले जाते हैं।

स्कूल की समय सीमा से परे बच्चों के साथ सम्बन्ध

मैंने पाया है कि यह शिक्षक-शिक्षिकाएँ अपने को सोमवार से शनिवार और नौ से तीन बजे की सीमा में नहीं बाँध पाते हैं। वे उन दिनों भी बच्चों के सम्पर्क में रहते हैं जब विद्यालय बन्द रहता है। उनकी एक स्वाभाविक कोशिश रहती है बच्चों की दिनचर्या को जानने की। विद्यालय से आने के बाद भी अपने बच्चों के लिए चार्ट बनाते हैं, बच्चों के लिए रंग, पेंसिल, कॉपी-किताब खरीदते हैं। आने वाले दिनों में क्या पढ़ाना है उसकी सामग्री भी तैयार करते हैं। एक शिक्षिका कहती हैं कि, "मेरे अपने बच्चों के स्कूल में जो पेंसिल, कॉपी, चॉक के टुकड़े नहीं चलते हैं उन्हें भी मैं अपने स्कूल में संजोकर रखती हूँ और हमारे स्कूल में तो वो सब चल पड़ते हैं। पेन्सिल की बस थोड़ी छिलाई की तो चल पड़ती है। पेंसिल और चॉक छोटी होती है तो उसे पकड़ने की आदत डालनी होती है, बस।"

सीखने-सिखाने की तत्परता

एक और बात इन सब शिक्षकों में महसूस की है मैंने। इन तमाम साथियों में कहे-अनकहे रूप में बच्चों को सिखाने की एक चिन्ता रहती है। बच्चे कुछ सीख नहीं पाते हैं तो उसका हल ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं। यही कोशिशें इन्हें और अधिक सीखने के लिए भी प्रेरित करती है। यही बातें इन्हें विभिन्न मंचों पर सक्रिय भागीदारी की तरफ भी ले जाती है। ऐसा लगता है कि जैसे कोई एक अच्छी या बुरी आदत माला की तरह पिरोई होती है। एक बुरी आदत दूसरी बुरी आदत को अपनी तरफ आकर्षित करती है तो एक अच्छी आदत दूसरी अच्छी आदत को जन्म देती है। ऐसा ही कुछ इन शिक्षकों के साथ भी होता है। इस प्रकार की तत्परता और भागीदारी इन्हें पढ़ने-लिखने के लिए प्रेरित करती है।

एक व्यापक नज़रिए से देखना

मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ कि यह जो असरकारी और प्रभावी शिक्षक हैं वे यह सारी-की-सारी प्रक्रियाओं को अपनाते हैं, लेकिन अक्सर इन आयामों में प्रयास करते हुए दिखते हैं। जिस पृष्ठभूमि के बच्चों की बात यहाँ पर की जा रही है उनके साथ केवल प्रगतिशील, नवाचारी कक्षा-कक्षीय शिक्षण-विधाओं से बेहतर अपेक्षित परिणाम आ पाते हैं, इस पर मुझे सन्देह है। इस बात को ऐसे भी कह सकता हूँ कि मैंने ऐसे होते हुए नहीं देखा है। लेकिन जो लोग शिक्षण-विधाओं के साथ उपरोक्त क्रियाओं में अपने को भागीदार बनाते हैं उनके परिणाम निश्चित ही बेहतर दिखते हैं। शिक्षा की भूमिका को साक्षरता और किताबी ज्ञान से आगे व्यक्ति-निर्माण तक देखना अधिक महत्त्वपूर्ण है। देखने की ऐसी नज़र तो लोगों के बीच अन्तःक्रिया करके ही आ पाती है, न केवल नज़र आ पाती है बल्कि बच्चों के साथ काम क्या करना है और कैसे करना है, इनके बीजों का अंकुरण भी हो पाता है जब अभिभावकों के साथ हमारे जीवन्त सम्बन्ध होते हैं।

दूसरी बात यह समझने की है कि विद्यालय समाज का एक हिस्सा है न कि कोई कटी हुई इकाई जिसका अपने आप में कोई अस्तिव हो। बेहतर शिक्षण तभी सम्भव हो पाता है जब हम एक-दूसरे में रहकर एक-दूसरे को समझते हैं। हिस्से को अलग करके नहीं समझा जा सकता। ऐसा करना अन्धों द्वारा हाथी को समझने जैसा ही होगा। चूँकि बच्चा समाज व परिवार में ही रहता है, उसे सही स्वरूप में समाज और परिवार के हिस्से के बतौर ही समझा जा सकता है। परिवार और समाज से बाहर निकालकर समझने की कोशिश करेंगे तो वह वैसा समझ नहीं आएगा जैसा वह है। जब, जैसा है वैसा समझ नहीं आएगा तो शिक्षक और बच्चे के बीच की अन्तःक्रिया प्रभावी शिक्षण के रूप में नहीं हो सकती। किसी को केवल नौ से तीन की नौकरी मात्र करनी है तो ठीक है लेकिन प्रभावी शिक्षण के लिए इस प्रक्रिया को सम्पूर्णता के साथ ही समझना होता है। जब हम यह रिश्ते कायम करते हैं तो हमें चीज़ें समझनी नहीं पड़तीं बल्कि ख़ुद-ब-ख़ुद समझ आ जाती हैं। यह केवल शिक्षक की संवेदनशीलता और भावात्मक पक्ष को ही नहीं निखारता बल्कि शिक्षण के कौशल की धरती को भी हरा-भरा करने की सम्भावना को खोलता है।

एक शिक्षिका का कथन

प्रियंका जब प्रवेश लेने आई तो वो मेरी साड़ी के पल्लू के पीछे छुप गई थी। उसकी नानी प्रवेश दिलाने आई थी। सब ठीक चलता रहा। पढ़ने में औसत से कम ही करती थी। थोड़ी डाँट लगते ही वो चुप हो जाती थी। उपस्थिति भी कम हो रही थी। उससे बात करने की कोशिश की तो कुछ ख़ास नहीं निकला। मैंने सोचा कि घर जाकर देखना चाहिए शायद कुछ बातें समझ आएँ। घर जाकर जब नानी से बात की तो मेरे पाँव तले ज़मीन खिसक गई। नानी ने कहा कि प्रियंका की मौसी के पति का देहान्त हो गया, मौसी अकेली रह गई तो इसके माता-पिता ने इसे इसकी मौसी को दे दिया ताकि मौसी का अकेलापन कुछ कम हो। कुछ समय बाद मौसी ने काम शुरू किया तो चंडीगढ़ चली गई। अब यह मेरे पास ही रहती है। यह कहानी सुनकर मैं बहुत रोई। दूसरे दिन जब मैं स्कूल गई तो मैं उसे डाँटने ही वाली थी कि मेरी आँखें भर आईं। मैं जल्दी से ऑफिस में गई और अपने को संयत किया। फिर आई और उसे गले से लगाया और प्यार से समझाया। अब मैं गृहकार्य न करने पर उससे बात करती। उसकी उपस्थिति

बढ़ने लगी और पढ़ाई में भी बेहतर होने लगी। नानी अब सारे दुख-सुख मुझे बताती हैं और कभी-कभी बाज़ार से सामान लाना होता है तो मुझे कहती हैं। 'चुलू' पकने पर मेरे लिए भेजती हैं। और कभी-कभी हरी सब्जी भेजती हैं।

एक और शिक्षिका की ज़बानी

राधिका अक्सर विद्यालय देर से आती थी। बहुत बार समझाया पर कुछ असर नहीं पड़ा। प्रार्थना सभा में भी सभी को समय पर स्कूल आने को कहा। मैंने दूसरे बच्चों से पड़ताल की तो बच्चों ने कहा कि इसके पापा देर से जागते हैं। फिर मैंने घर जाकर समझाना उचित समझा। घर गई तो पता चला कि राधिका की माँ नहीं है। माँ ने आग लगा कर आत्महत्या कर ली थी। पिता दारू पीते हैं और सुबह देर से जागते हैं इसलिए राधिका देर से स्कूल आती है। पिता से बात की तो उन्होंने उसे बड़ी बुआ के पास भेज दिया। राधिका के बारे में सोचकर मेरा दिल पीड़ा से भर उठा। मेरा राधिका के साथ व्यवहार अब ज़्यादा सजग और आत्मीय हो गया। मेरा उसके घर आना-जाना होता रहा। एक दिन मैं गई तो सारे बच्चे सकपका कर भाग गए। कुछ सामान, जिससे वे कुछ कर रहे थे उसे भी छिपा दिया। सभी जगह काग़ज़ और आटे की लेई बिखरी थी। मैंने अधिक कुरेदना उचित नहीं समझा, सोचा फ़िर कभी बात करूँगी। एक दिन परीक्षा के बाद सभी शिक्षक एक जगह कॉपियाँ जाँच रहे थे। मैं बच्चों की कक्षा में गई तो राधिका और उसकी बुआ के बच्चे चुपके-चुपके काग़ज़ के लिफ़ाफ़े बना रहे थे। मेरे देखते ही उन्होंने छुपा दिए। मैंने धीरे-धीरे प्यार से पूछा तो मालूम हुआ कि यह बच्चे लिफ़ाफ़े बनाते हैं और बाज़ार में बेचते हैं। अब मैंने बच्चों के लिए क्राफ्ट की क्लास लगा दी। सभी बच्चों को लिफ़ाफ़े बनाना सिखाने लगी। राधिका और बच्चे तो एक्सपर्ट थे। वे अब दूसरे बच्चों को भी सिखाने लगे। दूसरे दिन मैं घर से भी अख़बार ले गई। सभी बच्चे जो लिफ़ाफ़े तैयार करते उसे राधिका को दे देते। राधिका जो एक दिन इस काम को करते हुए झिझक रही थी वह आज सहज और सिखाने का गर्व भी महसूस कर रही थी। उसकी पढ़ाई भी बेहतर हो गई और स्कूल आना भी नियमित। उसने मुझे लिखा है कि मैं उसकी माँ होती तो कितना अच्छा होता। उसने लिखा, "आप मुझे माँ जैसी लगती हैं।"



जगमोहन सिंह कठैत गत 28 वर्षों से सामाजिक क्षेत्र में काम कर रहे हैं। पिछले 11 वर्षों से वे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के साथ जुड़े हुए हैं। वे गढ़वाल क्षेत्र में फाउण्डेशन का काम सम्भालते हैं और वर्तमान में श्रीनगर, उत्तराखण्ड में रहते हैं। उन्होंने 18 वर्षों तक सोसाइटी फॉर इंटीग्रेटेड डेवलपमेंट ऑफ़ हिमालायाज़ (SIDH) के लिए काम किया है जिसमें वे विभिन्न शैक्षिक मुद्दों और ग्रामीण विकास के नवाचारी और वैकल्पिक तरीक़े खोजने के कार्यों से जुड़े हुए थे। उनसे Jagmohan@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।